LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 12: भक्तियोग

1/2 (श्लोक 1-10), शनिवार, 21 सितंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/4LHVinT9PxY

भक्ति की शक्ति

ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ प्रार्थना एवम् दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। हमारे कई जन्मों के सत्कर्मों के फलस्वरूप हमें गीता जी को सीखने की प्रेरणा प्राप्त हुई और हम श्रीगीता जी को पढ़ने, पढ़ाने और जीवन में लाने हेतु गीता परिवार द्वारा सञ्चालित विश्व की सबसे बड़ी ऑनलाइन गीता कक्षाओं से जुड़ गये हैं। तिरेपन सौ वर्ष पूर्व श्रीभगवान ने अर्जुन से गीता जी का कथन किया। तब से अब तक विभिन्न धर्म, जाति एवम् देश के लोग गीता जी का अध्ययन करने के लिये उत्सुक हैं।

मूल रूप से वैष्णव, शैव और शाक्त तीन सम्प्रदाय हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने विचार किया किस ग्रन्थ को ऊपर लाया जावे, उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता को चुना। हमारे न्यायालयों में श्रीमद्भगवद्गीता पर हाथ रखकर सत्यता की शपथ ली जाती है।

अनेक साधक ऐसे होंगे जिन्होंने पहले श्रीमद्भगवद्गीता न पढ़ी हो या उसका अर्थ न समझा हो। धर्म का अर्थ उपासना पद्धति से नहीं है। इसका अर्थ यह नही है कि तिलक कैसे करें, चोटी रखनी है या नहीं? श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान ने सभी बातों का मूल चित्रण किया है। उन्होंने मार्ग की कोई बात नहीं की है।

किसी को दिल्ली से मुम्बई जाना हो तो सड़क मार्ग, हवाई मार्ग या रेल
मार्ग के अनेक विकल्प हो सकते हैं। सबकी यात्रा का अनुभव, व्यय
राशि, यात्रा काल भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु सबका गन्तव्य स्थल एक ही होगा। श्रीभगवान ने इसी बात को श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है।

गीता जी में कहीं भी, किसी उपासना पद्धति का विशेष उल्लेख नहीं है। भगवद्गीता में श्रीभगवान ने सभी मूल विषयों का चिन्तन किया है। गन्तव्य तक पहुँचने के लिये अलग-अलग मार्ग हैं, किन्तु पहुँचना तो सब को एक ही ईश्वर तक है। उपासना पद्धति से कोई अन्तर नहीं पड़ता, अन्तर पड़ता है कि हम गन्तव्य तक पहुँचे कितना? गीताजी के द्वारा मानव जाति के कल्याणार्थ श्रीभगवान ने यह चिन्तन हम तक पहुँचाने के लिये अर्जुन को निमित्त मात्र बनाया है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

श्रीभगवान ने अर्जुन को बछड़ा रूपी निमित्त बनाकर सारे संसार के कल्याण हेतु यह अमृत हम सबको दे दिया है। भगवद्गीता को वही पढ़ पाते हैं, जो श्रीभगवान के द्वारा चुने हुए हैं। श्रीभगवान स्वयं कहते हैं कि भगवद्गीता मेरा हृदय है।

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।

अट्ठारहवें अध्याय के अड़सठवें श्लोक में श्रीभगवान ने कहा कि जो श्रीगीता जी को पढ़ेगा, चिन्तन करेगा, वह सीधा मुझे ही प्राप्त करेगा।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
18:68

इसलिए जिनके पूर्व जन्मों के सुकृत न हों या जिन पर भगवत्कृपा न हो, वे श्रीमद्भगवद्गीता में नहीं लग सकते।

नये साधकों के मन में यह प्रश्न निश्चित ही उत्पन्न हुआ होगा कि हम गीता जी का अध्ययन प्रथम अध्याय से न करके, बारहवें अध्याय से ही क्यों कर रहे हैं। गीता परिवार में गीता जी का अध्ययन बारहवें अध्याय से इसलिये महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि भक्तियोग नामक यह अध्याय गीता जी का हृदय है। अति लघु होने के साथ-साथ सरलतम है। पठन-पाठन में इसे समझने एवं जानने की दृष्टि से एक सुन्दर अध्याय है। इसमें अनुष्टुप छन्द के बीस श्लोक हैं। अनुष्टुप छन्द आठ-आठ मात्राओं वाला बीस मात्रा का छोटा छन्द है, जो समझने में सरल है, अत: प्रारम्भ में बारहवाँ अध्याय पढ़ने के लिये उपयुक्त है।

अङ्ग्रेज भारत आए तो उन्होंने मुम्बई समुद्र तट पर Gate way of India बनाया। पश्चिम से आने वालों के लिए समुद्र मार्ग से वही भारत का प्रवेश द्वार है। बाद में दिल्ली राजधानी बनी तो हवाई मार्ग से सीधा दिल्ली पहुँचा जाने लगा। दिल्ली में India gate बनाया गया। यह सम्पूर्ण भारत की संस्कृति का हृदय स्थल है।

ग्रन्थ को उपन्यास की भाँति नहीं पढ़ा जा सकता। हमारे शास्त्रों को पढ़ने से पूर्व गुरु से आज्ञा लेनी पड़ती है। गुरु के बताए अनुसार पढ़ने से ही शास्त्र ग्रन्थों की मूल भावना आत्मसात हो पाती है।

We can't start from page one.

जब बोला जाता है तो सामने उपस्थित श्रोता की ग्राह्य क्षमता के अनुसार बोलना होता है। पढ़ने वाले की ग्राह्य क्षमता के अनुसार ही निर्धारित किया जाता है कि कहाँ से पढ़ना आरम्भ किया जा सकता है।

गीता जी का Gate way द्वादश अध्याय है और India gate प्रथम अध्याय है। शकुनि के छल का आश्रय लेकर दुर्योधन ने पाण्डवों का राज्य ले लिया। उन्हें बारह वर्ष का वनवास व एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ। पाण्डव जानते थे कि यह अनुचित है। यदि वे यह न मानते तो किसी में उनका प्रतिकार करने का साहस नहीं था। तब तक इन्द्रप्रस्थ सम्राट युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करके चक्रवर्ती बन चुके थे। दुर्योधन, धृतराष्ट्र या किसी में भी इतना साहस नहीं था कि उन्हें बलात् वन भेज सकें किन्तु पाण्डव धर्मशील थे। वे अपने ज्येष्ठ पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर बाहर वर्ष कठिन वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की पीड़ा में रहे। वे विराट राज्य में गौशाला व घुड़साल के सेवक, रसोईया व द्रौपदी परिचारिका बन कर रहीं। एक वर्ष तीन माह पश्चात पाण्डवों ने अपना राज्य माँगा तो दुर्योधन ने लौटाने से मना कर दिया। दो बार विराट नरेश के दूतों ने हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र को समझाया। श्रीकृष्ण भी युद्ध टालना चाहते थे। सबके रोकने पर भी भगवान श्रीकृष्ण स्वयं सेना सहित सात्यिकि को साथ लेकर गये। हस्तिनापुर राजसभा में सबने श्रीकृष्ण के शान्ति प्रस्ताव की सराहना की। आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, महामन्त्री विदुर और स्वयं धृतराष्ट्र भी श्रीकृष्ण के प्रस्ताव से सहमत थे, किन्तु दुर्योधन असहमत था। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से शान्ति का परिवचन देते हुए पाँच गाँव माँगे। सैद्धान्तिक रूप से तो धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करके सार्वभौमिक सम्राट थे, किन्तु भाईयों में वैमनस्य न हो इसलिए वे पाँच गाँवों से ही सन्तुष्ट थे। दुर्योधन इस पर भी असहमत रहा।

श्रीकृष्ण जब हस्तिनापुर से विराट को लौटने लगे, तब माता कुन्ती ने अपने पुत्रों को सन्देश भिजवाया। उन्होंने कहा - हे कृष्ण!

जाकर युधिष्ठिर से कहना, क्षत्राणियाँ जिस दिन के लिए पुत्र को जन्म देती हैं, वह समय आ गया है। तुम राजा हो, तुम्हारा कर्त्तव्य है अपनी प्रजा की रक्षा करना। जब माता कुन्ती ने स्पष्ट सन्देश भेजा, तब युधिष्ठिर युद्ध के लिए सहमत हुए। युद्ध की आज्ञा माँ से मिली है। धर्मत: यह राज्य मेरा है। प्रजा का पालन और रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। तब भी यह युद्ध अकस्मात् नहीं हुआ। दुर्योधन तेरह वर्षों से युद्ध की तैयारी कर रहा था। उसने येन-केन प्रकारेण ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र कर ली थी। अढ़ाई लाख के बराबर एक अक्षौहिणी होती है। पाण्डवों की ओर से सात अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। हस्तिनापुर और विराट के मन्त्रियों ने विचार विमर्श करके पूरे भारत में धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र को युद्धस्थल के रूप में उचित पाया। कुरुवंश के पूर्वजों ने तथा अनेक ऋषि मुनियों ने यहाँ तप किया था। ऐसी तपोभूमि पर युद्ध में क्षात्रधर्म का पालन करते हुए, वीरगति पाने वालों के लिए स्वर्ग का द्वार है। युद्धस्थल समतल हो, पर्याप्त जल आपूर्ति हो, आवागमन के मार्ग सुगम व सुलभ हों, अश्वशालाएँ हों, भण्डारण व्यवस्था हो। जो सुविधाएँ न हों वे निर्माण की जावें, इसलिए धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र को युद्धस्थल के रूप में मान्यता दी गयी। सभी तैयारियाँ करने में लगभग एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया। सेनाएँ एकत्र हुईं। दोनों ओर के सेनापति और पुरोहित विचार विमर्श के लिए मिलते-जुलते रहते थे। युद्धारम्भ हेतु मोक्षदायिनी एकादशी का मुहूर्त निश्चित किया गया।

जब दोनों सेनाएँ युद्ध भूमि में आमने-सामने खड़ी हुईं, दोनों ओर से युद्ध की तैयारी है। तब अर्जुन ने भगवान से कहा - हे केशव! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो।

I want to see both the armies,
What preparations are going on?

अर्जुन के मन में मोह आ रहा है। आज तक अर्जुन ने अनेक युद्ध लड़े और जीते हैं। वे कभी कोई युद्ध हारे नहीं हैं।

गीता प्रेस गोरखपुर की छः खण्ड की सम्पूर्ण महाभारत आती है। दो खण्ड में संक्षिप्त महाभारत आती है, अवश्य पढ़नी चाहिए। यह अनावश्यक भ्रान्ति है कि महाभारत ग्रन्थ घर में नहीं रखना चाहिए। यह जय ग्रन्थ है। इससे विजय प्राप्त होती है। महाभारत में लगभग एक लाख पात्र हैं। भगवान श्रीकृष्ण से अन्यथा अर्जुन का चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है। सर्वथा अनन्य चरित्र हैं अर्जुन, इसलिए श्रीभगवान ने उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता सुनाई है। युद्ध के समय अर्जुन की आयु चौरासी वर्ष की थी, चित्र में देखने पर हमें सर्वथा तीस-पैंतीस वर्ष के युवा लक्षित होते हैं। श्रीकृष्ण उस समय नवासी वर्ष के थे।

अर्जुन ने अनेक भयङ्कर युद्ध जीते हैं। खाण्डव वन के युद्ध में देवताओं को परास्त किया है। शिवजी को प्रसन्न करने गये तो महादेव किरीट के रूप में आये। उनके साथ दस दिन तक मल्लयुद्ध किया है। इन्द्र और उर्वशी ने अर्जुन की परीक्षा ली, वे अविचल रहे। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न परीक्षाएँ पार करते हुए कभी डिगे नहीं हैं। जिस प्रकार श्री लक्ष्मण जी ने निद्रा पर विजय पाकर, चौदह वर्ष श्रीराम की सेवा की, उसी प्रकार अर्जुन ने दिव्यास्त्र प्राप्त करने हेतु निद्रा पर विजय प्राप्त की। तप करके सशरीर स्वर्ग में गये।

लक्ष्मण जी दिन में श्रीराम की सेवा करते और रात्रिकाल में वीरासन में तन कर बैठते थे। वे चौदह वर्ष नहीं सोए। अर्जुन छः माह तक नदी के ऊपर पेड़ पर बैठते, निद्रा आने पर नदी में गिरते और जाग जाते। निद्रा को जीतने से उन्हें गुडाकेश कहा जाता है। स्वर्ग में अप्सरा उर्वशी प्रणय निवेदन करने आई तो अर्जुन ने नयन मूँद लिए। अर्जुन ने कहा कि आप कुरुवंश के किसी पूर्वज की माता हैं, इसलिए मैं आपको भोग की दृष्टि से नहीं देख सकता, मेरे लिए आप माता ही हैं। महाभारत में यह लम्बा वार्तालाप है। अर्जुन अपने धर्माचरण से नहीं डिगते, अन्त में उर्वशी क्रुद्ध होकर महावीर अर्जुन को एक वर्ष तक नपुंसक होने का श्राप दे देती है।

उर्वशी के श्राप के परिणाम स्वरूप अर्जुन ने नपुंसक वृहन्नला के रूप में विराटराज की पुत्री उत्तरा को नृत्य का प्रशिक्षण दिया। पूरे महाभारत में अर्जुन किसी बड़े के समक्ष एक बार भी तीव्र स्वर में नहीं बोले हैं। अपनी किसी उपलब्धि का वर्णन भी किसी के समक्ष नहीं किया है। उनकी वीरता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता, फिर भी वे अत्यन्त विनम्र, सौम्य और नीतिज्ञ हैं, इसलिए कृष्ण उन पर रीझे हुए हैं।

खाण्डव-वन दहन के प्रसङ्ग में समस्त दहन हो जाता है, देवता भी उन्हें रोक नहीं पाते। अग्निदेव व वरुणदेव आकर अर्जुन और

श्रीकृष्ण का आभार प्रकट करते हैं। अर्जुन को अग्निदेव गाण्डीव देते हैं। वरुणदेव रथ देते हैं, जिसमें चार श्वेत घोड़े जुते हैं, पृथ्वी से ऊपर हवा में चलता है, ध्वजा पर हनुमान जी का निवास है। वरुणदेव श्रीकृष्ण से कहते हैं- हे भगवन् आपकी बनाई विधि अनुसार देवता देने को बाध्य हैं। मैं आपको क्या दूँ जो मेरे वश में हो। भगवान कृष्ण कहते हैं कि हे देव! मेरी अर्जुन के साथ सदैव प्रीति बनी रहे ऐसा वरदान दें।

भक्त तो सभी श्रीभगवान का प्रेम माँगते हैं, यहाँ स्वयं उन्होंने अर्जुन का प्रेम माँगा है। अर्जुन श्रीभगवान को अत्यन्त प्रिय हैं। वे हर परिस्थिति में अर्जुन के साथ खड़े हैं। श्रीभगवान को अर्जुन के लिए गीता ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी, यह अर्जुन को निमित्त बनाकर हमारे लिए कही गई है।

युद्ध आरम्भ होने से पूर्व अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण से सहायता प्राप्त करने जाते हैं। अर्जुन पाँवों की ओर हैं, श्रीभगवान की दृष्टि पहले उन पर पड़ती है। एक ओर श्रीकृष्ण निहत्थे और अकेले, दूसरी और नारायणी सेना। अर्जुन सेना को नहीं, श्रीकृष्ण को चुनते हैं। वे इसी में अपना कल्याण जानते हैं। अर्जुन का श्री भगवान पर अनन्य प्रेम है और उनका भी अर्जुन पर अनन्य प्रेम है। दोनों में नर नारायण का पूर्व सम्बन्ध है।

श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश का प्रसङ्ग महाभारत युद्ध के दसवें दिन आता है। आरम्भिक दस दिन सञ्जय युद्धस्थल पर ही थे। दसवें दिन भीष्म पितामह के शरशैय्या पर आ जाने का समाचार देने हस्तिनापुर जाते हैं। तब धृतराष्ट्र कहते हैं कि मुझे सारा वृत्तान्त आरम्भ से सुनाओ-

धृतराष्ट्र उवाच
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

1:1

नारायण स्वामी नाम श्रेष्ठ सन्त थे। उनके एक विद्वान और श्रेष्ठ आचरण वाले मित्र श्रमण थे। एक दिन श्रमण नारायण स्वामी के पास आए और बड़े होने के कारण उन्हें प्रणाम करके बोले आप मुझे भक्ति का ज्ञान दें। नारायण स्वामी ने जल से भरा बर्तन लाकर दिया। श्रमण ने थोड़ा सा जल पिया, उन्हें प्यास नहीं थी। नारायण स्वामी भीतर गये और श्रमण को सम्बोधित करते हुए कहा, जल मत पीना मैं शर्बत लाता हूँ। वे शर्बत भरा पात्र लाए और पहले वाले पात्र में उड़ेल दिया। श्रमण ने आश्चर्यचकित होकर कहा- मित्र, यह क्या कर रहे हो? यह बर्तन खाली नहीं है, इसमें डाला गया शर्बत बह गया।

नारायण स्वामी ने कहा यही तुम्हारी प्रथम शिक्षा है। भरे हुए बर्तन में कुछ उड़ेला नहीं जा सकता, बर्तन खाली होने पर ही उसमें डाल सकते हैं।

श्रमण समझ गये। नारायण स्वामी ने कहा तुमने बहुत कुछ पढ़ा है, जाना है, सीखा है वह सब तुम्हारे भीतर है, उसमें रिक्त स्थान नहीं है कि भक्ति का ज्ञान उड़ेला जा सके। मैं जानता हूँ, मुझे पता है, मैं योग्य हूँ, मैं विद्वान हूँ! ये सब मस्तिष्क से निकाल कर, खाली करो, तभी मस्तिष्क में भक्ति का प्रवेश हो सकेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करने से पूर्व हमें अपने सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा। श्रीभगवान का श्रृङ्गार करने के लिए विगत दिवस का श्रृङ्गार हटाना पड़ता है। नया सौन्दर्य प्रसाधन प्रयोग करने से पूर्व चेहरा साफ करना पड़ता है। बिना पुराना उतारे, नया चढ़ाया नहीं जा सकता।

श्रीमद्भगवद्गीता को जानना है तो मन और बुद्धि को परे रख दें। सात सौ श्लोकों की श्रीमद्भगवद्गीता में एक श्लोक धृतराष्ट्र ने कहा, इकतालीस श्लोक सञ्जय ने कहे, चौरासी श्लोक अर्जुन ने कहे और पाँच सौ चौहत्तर श्लोक भगवान श्रीकृष्ण ने कहे हैं।

12.1

अर्जुन उवाच
एवं(म्) सततयुक्ता ये, भक्तास्त्वां(म्) पर्युपासते|
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं (न्), तेषां(ङ्) के योगवित्तमाः||1||

अर्जुन बोले - जो भक्त इस प्रकार (ग्यारवें अध्याय के पचपनवें श्लोक के अनुसार) निरन्तर आप में लगे रहकर आप (सगुण साकार) की उपासना करते हैं और जो अविनाशी निर्गुण निराकार की ही (उपासना करते हैं), उन दोनों में से उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

विवेचन- अब तक अर्जुन श्रीभगवान को बहुत ज्ञानी, योग्य और बहुत उच्च स्तरीय तो मानते थे, पर श्रीभगवान नहीं मानते थे। दशम् अध्याय में श्रीभगवान ने अपनी विभूतियाँ बताईं तो अर्जुन ने देखने की इच्छा प्रकट की। एकादश अध्याय में श्रीभगवान ने विश्वरूप दिखाया तो अर्जुन भयभीत हो गए। पहले उन्होंने चतुर्भुज रूप में आने की प्रार्थना की फिर सामान्य कृष्ण रूप में आ जाने की प्रार्थना की। अर्जुन तो अब तक श्रीकृष्ण को सखा रूप में ही जानते रहे थे -

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥
11:41

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान ने चार मार्ग बताए हैं -
ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग

इनमें भी मुख्य दो हैं - भक्तियोग और ज्ञानयोग
ध्यानयोग ज्ञानयोग के अन्तर्गत आता है।
कर्मयोग भक्तियोग के अन्तर्गत आता है।

अर्जुन ने ज्ञानयोग और भक्तियोग जान लेने के बाद पूछा कि हे भगवन्! आपकी जो सगुण साकार रूप में भक्ति करने वाले हैं अथवा जो निर्गुण, निराकार, सर्वशक्तिमान समझकर आपकी उपासना करते हैं, दोनों में श्रेष्ठ कौन हैं?

हमारे मन मन भी ऐसा प्रश्न उठता है? श्रीभगवान सबसे अच्छे वक्ता हैं, एक उत्तम वक्ता का लक्षण होता है कि वह पहले प्रश्नकर्ता के प्रश्न का सङ्क्षिप्त उत्तर दे देता है, बाद में उसकी विस्तृत व्याख्या करता है। श्रीभगवान ने दूसरे श्लोक में अर्जुन के प्रश्न का उत्तर दिया एवम् तीसरे श्लोक से अन्तिम बीसवें श्लोक तक उसका विस्तृत वर्णन किया।

12.2

श्रीभगवानुवाच
मय्यावेश्य मनो ये मां(न्), नित्ययुक्ता उपासते|
श्रद्धया परयोपेता:(स्), ते मे युक्ततमा मताः||2||

श्रीभगवान् बोले - मुझ में मन को लगाकर नित्य-निरन्तर मुझ में लगे हुए जो भक्त परम श्रद्धा से युक्त होकर मेरी (सगुण साकार की) उपासना करते हैं, वे मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा- जो लोग अपने मन को मेरे साकार रूप में एकाग्र करते हैं और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरी पूजा करने में सदैव लगे रहते हैं, वे मुझे अत्यन्त मान्य हैं।

नित्ययुक्ता-

एक बार एक युवा बालक को अपनी शादी का निमन्त्रण पत्र देने जाना था, उसी समय उसका अति विशिष्ट मित्र उसके घर आया। वह उसे अपने साथ चलने के लिये आग्रह करने लगा। मित्र ने अपने कपड़े अच्छे न होने के कारण जाने से मना किया। किन्तु युवा बालक ने कहा कि तुम मेरे कपड़े पहन लो और चलो। उस मित्र ने उसकी पसन्द के सबसे अच्छे कपड़े पहन लिये। उन कपड़ों को पहने देख कर युवा बालक को बहुत क्रोध आया, किन्तु वह कुछ बोला नहीं और दोनों चल दिये। वहाँ जाकर उसने मित्र का परिचय दिया और कहा कि यह मेरा मित्र है, इसने जो कपड़े पहने हैं वे भी मेरे ही हैं। वह ऐसा कहना नहीं चाहता था, किन्तु इन कपड़ों में मन ऐसा लगा हुआ था कि उसने बोल दिया। दूसरे मित्र ने बहुत अपमानित अनुभव किया और अत्यन्त क्रोधित हुआ। मित्र के क्रोधित होने पर उसने दूसरे घरों में वही बात दूसरे ढङ्ग से कही, पर कही अवश्य। इसका कारण था कि उसका मन कपड़ों में ही लगा हुआ था। इसी प्रकार जब हम हर कार्य करते हुए मन श्रीभगवान में लगा कर रखते हैं तो यह नित्ययुक्ता होता है।

नई बहु ससुराल आती है, वह सास-ससुर की सेवा करती है, घरेलू कार्य करती है, तो भी उसके मन अपने पति में ही लगा रहता है। ऐसे ही हम भी सभी सांसारिक क्रियाओं को करते हुए भी, अपना मन परमेश्वर में ही लगाए रखें। तभी नित्ययुक्ता भक्त कहलाएँगे।

हम केवल पाँच मिनट ताली बजाकर तो सतत नित्ययुक्ता भक्त नहीं हो पाएँगे। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीभगवान स्पष्ट कहते हैं कि जो व्यक्ति उनके साकार रूप में अपने मन को एकाग्र करता है और जो अत्यन्त श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक उन्हें पूजता है, वह योग में परम सिद्ध है। भौतिक जीवन में व्यस्त रहते हुए भी हर कार्य को श्रीभगवान को समर्पित करने वाला ही सर्वश्रेष्ठ योगी है।

दूसरे शब्दों में श्रीभगवान ने अर्जुन को स्पष्ट बता दिया कि ज्ञानयोग तुम्हारे लिए नहीं है। श्रीभगवान ने तीसरे और चौथे श्लोक में ज्ञानयोग बताया है।

12.3

ये त्वक्षरमनिर्देश्यम्, अव्यक्तं(म्) पर्युपासते|
सर्वत्रगमचिन्त्यं(ञ्) च, कूटस्थमचलं(न्) ध्रुवम्||3||

और जो (अपने) इन्द्रिय समूह को वश में करके चिन्तन में न आने वाले, सब जगह परिपूर्ण, देखने में न आने वाले, निर्विकार, अचल, ध्रुव, अक्षर और अव्यक्त की तत्परता से उपासना करते हैं, वे प्राणिमात्र के हित में प्रीति रखन् वाले (और) सब जगह समबुद्धि वाले मनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं।

12.4

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं(म्), सर्वत्र समबुद्धयः|
ते प्राप्नुवन्ति मामेव, सर्वभूतहिते रताः||4||

जो अपनी इन्द्रियों को वश में करके अचिन्त्य, सब जगह परिपूर्ण, अनिर्देश्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अक्षर और अव्यक्त की उपासना करते हैं, वे प्राणिमात्र के हित में रत और सब जगह समबुद्धि वाले मनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान ने अर्जुन को निर्गुण ब्रह्म के आठ लक्षण बताए हैं। सगुण साकार का तो हमें ज्ञान है। मुरली मनोहर का चित्र है, अयोध्या में श्रीराम की मूर्ति है, शिवजी की मूर्ति है, देवी माँ की मूर्ति है। ये सब चित्र व मूर्तियाँ हमने स्वयं नाम और रूप व आकार सहित देखी हैं। निराकार के विषय में श्रीभगवान आठ लक्षण बताते हैं-

अचिन्त्य - जिनका चिन्तन नहीं कर सकते, वे निर्गुण परमात्मा हैं। जिनके विषय में कुछ सोचा जा सकता है वे सगुण परमात्मा

हैं। मन और बुद्धि से जो परे है, वही अचिन्त्य है।

सर्वत्रगम- जो सब जगह हैं, कण-कण में श्रीभगवान। सर्वत्र व्याप्त हैं। सब ओर स्थित हैं।

अक्षर- जिनका क्षय नहीं होता, ज़ो न घटते हैं न बढ़ते हैं। सदैव एक जैसे ही रहते हैं।

अनिर्देश्य- जिनकी ओर हम सङ्केत नहीं कर सकते। चिह्नित नहीं किया जा सकता। हमारे सामने मुरली मनोहर का चित्र चिह्नित किया जा सकता है। जो सब दिशाओं में व्याप्त हैं उन्हें चिह्नित नहीं किया जा सकता।

अव्यक्त- इनको व्यक्त नहीं कर सकते, वे निराकार हैं। सगुण रूप को तो हम विभिन्न नामों से बुला सकते हैं, किन्तु निराकार का नाम नहीं रख सकते।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है -

नाम रूप गति अकथ कहानी।
समुझत सुखद न परति बखानी॥
बालकाण्ड

हम सगुण को व्यक्त कर सकते हैं।
रमति इति राम: जो रमण करता है वह राम है।
कर्षति इति कृष्ण: जो आकर्षित करता है, वह कृष्ण है।
ईश्वर: जो आठों गुणों का स्वामी है वह ईश्वर है।
गोविन्द: जो इन्द्रियों का स्वामी है।

सीतापति, लक्ष्मीपति किसी भी नाम से हम उन्हें बुला सकते हैं। जिन्हें निर्देशित किया जा सकता है, किसी भी नाम से बुलाया जा सकता है, वे सगुण हैं। जिन्हें किसी भी नाम से नहीं बुलाया जा सकता, वे निर्गुण हैं।

किसी व्यक्ति ने सब्जी खरीदी, वह जाने लगा, विक्रेता ने नाम लेकर पुकारा। नाम नहीं पता तो कहेगा नीले कुर्ते वाले भैया, नहीं तो कहेगा - सफेद कार वाले भैया। किसी भी सम्बोधन से पुकारा गया हो, व्यक्ति वही रहेगा। इसी प्रकार सगुण परमात्मा को राम, कृष्ण, शिव किसी भी नाम से सम्बोधित करें, तो भी वे वही रहेंगे और निर्गुण रूप में मानें तो भी वही रहेंग।

कूटस्थ- लोहार की दुकान में कूट होता है उसी पर रखकर वह विभिन्न आकृति के सामान, बर्तन आदि बनाता है। अनेक पीढ़ियाँ बीत जाने पर भी उसके आकार और क्षमता में परिवर्तन नहीं होता। कूट सदैव उसी प्रकार रहता है, बदलता नहीं। परमात्मा भी कूटस्थ हैं, कभी बदलते नहीं।
अचल एवम् ध्रुव- वे अचल हैं, कभी बदलते नहीं, स्थिर रहते हैं।

ये निराकार के आठ लक्षण हैं। भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने एक बार सेठ जयदयाल जी गोयन्दका से पूछा कि श्रीभगवान का स्वरूप अचिन्त्य है, तो चिन्तन कैसे करें? सेठजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया -

श्रीभगवान की लीलाओं का चिन्तन करें।

श्रीभगवान को लीलाधारी कहते हैं। नाम, रूप, लीला और धाम चार प्रकार से श्रीभगवान का चिन्तन किया जा सकता है। हम उनके नामों का चिन्तन करें, हम उनके अलग-अलग रूपों का चिन्तन करें, हम उनकी लीलाओं का चिन्तन करें और हम उनके धाम वृन्दावन, चित्रकूट आदि में जाकर चिन्तन करें।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
8:5

इन आठ प्रकार से जो भक्त निराकार रूप में ईश्वर की आराधना करते हैं, वे भी अन्ततः ईश्वर को ही प्राप्त होते हैं। जो समस्त प्राणियों के हित में लगे रहते हैं, वे ही परमात्मा को प्राप्त करते हैं -

सर्वभूतहिते रताः

चराचर सभी के हित में लगे रहने वाले (सम्पूर्ण भूतों के हित में जो लगे हुए हैं) और सबमें समान भाव रखने वाले योगी मुझे ही प्राप्त होते हैं। ब्रह्म के उपर्युक्त विशेषण मुझसे भिन्न नहीं हैं। जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार संयत करके, मन-बुद्धि के चिन्तन से अत्यन्त परे, सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप, सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, अव्यक्त, आकार रहित और अविनाशी ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

12.5

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्|
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं(न्), देहवद्भिरवाप्यते||5||

अव्यक्त में आसक्त चित्त वाले उन साधकों को (अपने साधन में) कष्ट अधिक होता है; क्योंकि देहाभिमानियों के द्वारा अव्यक्त-विषयक गति कठिनता से प्राप्त की जाती है।

विवेचन- हे अर्जुन! उस अव्यक्त अनिर्देशित परमात्मा की उपासना में क्लेश अधिक है। जो स्वयं को देह मानते हैं, उनके लिए निराकार उपासना कठिन होती है। हम अपने आप को शरीर ही समझते हैं।

बचपन से आज तक जब भी हमने अपना चिन्तन किया है, शरीर के रूप में ही किया है। बचपन से वृद्धावस्था तक की विभिन्न आयु वर्ग के विभिन्न चित्रों को देख कर पहचानना कठिन कार्य है। हम स्वयं का पुराना चित्र भी कठिनाई से पहचान पाते हैं। अगर हम शरीर ही होते तो पहचानना कठिन नहीं होता। शरीर प्रतिक्षण बदलता रहता है, उसे धारण करने वाला जीवात्मा लाखों जन्मों में भी परिवर्तित नहीं होता। साढ़े तीन वर्ष में शरीर की सम्पूर्ण कोशिकाएँ बदल जाती हैं।

Every cell of the body regenerates
within three & half years.

शरीर का रङ्ग, रूप, आकार सब बदल जाता है। यहाँ तक कि शरीर की आदतें भी बदल जाती हैं। पसन्द-नापसन्द, आचार-विचार और व्यवहार भी बदलता रहता है।

शरीर बदलता रहता है,
शरीर में स्थित मैं नहीं बदलता।

शरीर की स्थिति और प्रत्येक आयु वर्ग का समय यथावत, अपरिवर्तित रहता है। शरीर जन्म लेता है, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धत्व और फिर मर जाता है। शरीर में स्थित चैतन्य तत्त्व वही रहता है। लाखों करोड़ों शरीर बदलने पर भी चैतन्य तत्त्व नहीं बदलता।

जिसे यह शरीर ही सत्य लगता है, वह निराकार स्वरूप की उपासना नहीं कर सकता। जिसने स्वयं को शरीर न मानकर, चैतन्य तत्त्व होना जान लिया है, वही निर्गुण उपासना कर सकता है।

श्रीभगवान ने अर्जुन को आगे शास्त्रों में वर्णित नौ प्रकार की भक्ति बताई है, उस मार्ग से उपासना कर सकते हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
श्रीमद्भागवत 7 । 5। 23

नवधा भक्ति रामचरितमानस और श्रीमद्भागवत में आयी है।

श्रवण- श्रीभगवान की कथाएँ सुनना
कीर्तन- श्रीभगवान की कीर्ति का गायन करना।
स्मरण- हर क्षण श्रीभगवान को स्मरण करते रहना।
पादसेवन- श्रीभगवान के पाँव दबाना, जैसे लक्ष्मी माता।
अर्चना- राजा पृथु के जैसे।
वन्दनं - अक्रूर जी महाराज के जैसे।
दास्य- हनुमान जी के जैसे श्रीभगवान की दास्य भाव से सेवा करते रहना।
सख्य- अर्जुन के समान श्रीभगवान के प्रति सखा भाव रखना।
आत्मनिवेदन- स्वयं को श्रीभगवान के समक्ष अर्पित कर देना, जैसे राजा बलि।

यह नौ प्रकार की भक्ति होती है। इनमें से कोई भी एक प्रकार की भक्ति प्रमुखता से जीवन में आ जानी चाहिए।

12.6

ये तु सर्वाणि कर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्पराः|
अनन्येनैव योगेन, मां(न्) ध्यायन्त उपासते||6||

परन्तु जो कर्मों को मेरे अर्पण करके (और) मेरे परायण होकर अनन्य योग (सम्बन्ध) से मेरा ही ध्यान करते हुए (मेरी) उपासना करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि जो भक्त अपने सभी कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझमें परायण होकर अनन्य सम्बन्धों से मेरा ही ध्यान एवं उपासना करता है, मैं उसका इस मृत्यु संसार सागर से शीघ्र उद्धार करता हूँ।

जब भरत जी महाराज श्रीराम जी को मनाने के लिए चित्रकूट जा रहे थे, पूरी अयोध्या साथ जाने के लिये तैयार हो गई। माताएँ, सेनाएँ और मन्त्रीगण सभी जाना चाहते थे। भरत जी ने कहा कि इस राज्य की सम्पत्ति की सुरक्षा और राजकार्य सुचारू रूप से चलाने की दृष्टि से सब नहीं जा सकते। भरत जी ने अयोध्या की सुरक्षा और राजकार्य सुचारू रखने हेतु विशद योजना बनाई। वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन है। किसी ने उन पर व्यङ्ग्य किया कि आपको तो राज्य से मोह नहीं तो फिर उसकी रक्षा का यह कैसा मोह? तब भरत जी ने कहा-

सम्पति सब रघुपति कै आही।
जो बिनु जतन चलों तुम ताहीं।।
तौ परिनाम न मोरि भलाई।
पाप सिरोमनि साइँ दोहाई।।
अयोध्याकाण्ड

यह राज्य और सम्पत्ति श्रीराम की है, मुझे उसी रूप में श्रीराम जी को लौटाना है। हममें भी जब यह दृष्टि आ जाये कि धन-सम्पत्ति, परिवार, पद प्रतिष्ठा, मेरा कुछ नहीं, सब उस ईश्वर का है तो सांसारिक शरीर, धन-सम्पत्ति आदि के नष्ट होने पर दु:ख

नहीं होता है। पुत्र, पत्नी, प्रियजन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा परमात्मा के हैं, उन्होंने ले लिये। किसी के चले जाने का रोना नहीं आएगा। जब सांसारिक सम्बन्धों को शरीर से जोड़ लेंगे तब दुःख भी होगा।

जो भी है सब
श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

12.7

तेषामहं(म्) समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्|
भवामि नचिरात्पार्थ, मय्यावेशितचेतसाम्||7||

हे पार्थ ! मुझ में आविष्ट चित्त वाले उन भक्तों का मैं मृत्युरूप संसार-समुद्र से शीघ्र ही उद्धार करने वाला बन जाता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि जो भक्त अपने सभी कर्मों को मुझमें अर्पण करके, मुझमें परायण होकर, अनन्य सम्बन्धों से मेरा ही ध्यान एवं उपासना करता है, मैं उसका इस मृत्यु संसार सागर से शीघ्र उद्धार करता हूँ।

12.8

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं(न्) निवेशय|
निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं(न्) न संशयः||8||

(तू) मुझ में मन को स्थापन कर (और) मुझ में ही बुद्धि को प्रविष्ट कर; इसके बाद (तू) मुझ में ही निवास करेगा (इसमें) संशय नहीं है।

विवेचन- सभी सम्पत्ति श्रीभगवान की है, यह मान्यता कठिन लगती है। अर्जुन कुछ सरल उपाय का विकल्प चाहते हैं।

श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि तुम अपना मन और बुद्धि मुझ में लगा दो, तो तुम सदैव मुझमें ही निवास करोगे। जैसे हमने पूर्व दृष्टान्त में देखा कि युवक का मन अपने कपड़ों में ही लगा हुआ है। हमें भी इसी प्रकार अपना मन और बुद्धि परमेश्वर में लगाए रखने हैं।

अर्जुन पूछते हैं कि यह मैं किस प्रकार करूँ? श्रीभगवान कहते हैं, अपने सारे कर्म मुझे अर्पित कर दो। अर्जुन को यह उपाय भी कठिन लगता है कि हर समय मन और बुद्धि को परमात्मा में लगाए रखें। वे इससे भी सरल विकल्प चाहते हैं।

12.9

अथ चित्तं(म्) समाधातुं(न्), न शक्नोषि मयि स्थिरम्|
अभ्यासयोगेन ततो, मामिच्छाप्तुं(न्) धनञ्जय||9||

अगर (तू) मन को मुझ में अचल भाव से स्थिर (अर्पण) करने में अपने को समर्थ नहीं मानता, तो हे धनञ्जय ! अभ्यास योग के द्वारा (तू) मेरी प्राप्ति की इच्छा कर।

विवेचन- हे अर्जुन! यदि तुम मुझ में मन बुद्धि को स्थापित करने में समर्थ नहीं हो, तो अभ्यास योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने की इच्छा करो। कई लोग कहते हैं कि हम पूजा-पाठ, ध्यानादि करते हैं किन्तु मन नहीं लगता, इसलिये छोड़ दिया। श्रीभगवान का कहना है कि तुम जो कर रहे हो उसे निरन्तर करो, अभ्यास से सब सम्भव होता है।

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान।।

एक जेठानी और उसकी देवरानी आस-पड़ोस में रहती थीं। जेठानी ने सन्तान की कामना की। किसी महात्मा ने उपाय बताया कि एक वर्ष तक निरन्तर और निर्बाध रूप से शिवमन्दिर में दीपक जलावें। वह स्त्री शिवमन्दिर में जाकर दीपक जलाने लगी। देवरानी ईर्ष्यालु थी, वह उसका काम बिगाड़ने की नीयत से जाकर दीपक बुझा देती थी। कई माह तक दीपक प्रज्वलित करने और बुझाने का क्रम-प्रतिक्रम चलता रहा। वर्षा ऋतु में भयङ्कर बाढ़ आने से जेठानी शिवालय नहीं जा पाई। देवरानी अपने निश्चित समय पर निकली और वर्षा की बाधाएँ पार करती हुई मन्दिर पहुँच गयी। उसने अनुमान लगाया कि जेठानी द्वारा प्रज्वलित दीपक वर्षा और हवा के थपेड़ों से बुझा होगा, किन्तु वह तो स्वयं दीपक बुझाने की निरन्तरता बनाए रखना चाहती थी। उसने स्वयं दीपक जलाया और उसे बुझाने लगी तो शिवजी प्रकट हुए। उसे ग्लानि और पश्चाताप हुआ और रोने लगी।

उसने शिवजी से कहा- हे महादेव! मैं तो दीपक बुझाने आती थी। आपके समक्ष मेरी जेठानी ही दीपक प्रज्वलित करती रही है। भोलेनाथ ने कहा कि मैं तुम्हारी निरन्तरता के नियम से प्रसन्न होकर, तुम्हारे मन की कलुषता समाप्त होने का वरदान देता हूँ। भक्ति में निरन्तरता का नियम महत्त्वपूर्ण है। हम अपनी सुविधानुसार विकल्प तलाश कर लेते हैं। मन की सन्तुष्टि के लिए बहाना तलाश लेते हैं और कह देते हैं -

मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा

पर मन का चङ्गा होना भी तो आवश्यक है। मन में कलुषता नहीं होनी चाहिए।

अर्जुन अभ्यास से भी सरल विकल्प चाहते हैं तो आगे श्रीभगवान बताते हैं।

12.10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव|
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि||10||

(अगर तू) अभ्यास (योग) में भी (अपने को) असमर्थ (पाता) है, (तो) मेरे लिये कर्म करने के परायण हो जा। मेरे लिये कर्मों को करता हुआ भी (तू) सिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- हे अर्जुन यदि तुम उपर्युक्त अभ्यास में भी अपने को असमर्थ समझते हो तो, तुम जो कुछ कर्म करोगे वह मेरे निमित्त करो। इससे भी तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदास जी महाराज कहते थे-

यदि कुछ नहीं कर सकते तो दिनभर कहते रहो
हे नाथ मैं तुम्हें भूलूँ नहीं।

राम-राम रटते रहो जब तक घट में प्राण
कभी तो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान।।

तुलसी मेरे राम को रीझ भजो या खीझ।
भौम पड़ा जामे सभी उल्टा सीधा बीज।।

बीज को भूमि में कैसे भी डालें वह ऊपर ही आयेगा। हम जिस भूमिका में हैं, उसी को श्रीभगवान की इच्छा समझ कर पूर्ण करें। ईश्वर को समर्पित करके कर्म करें।

तुलसीदास जी कहते हैं-

भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥
बालकाण्ड

यदि तुम भक्तियोग के विधि-विधानों का भी अभ्यास नहीं कर सकते, तो मेरे लिए कर्म करने का प्रयत्न करो, क्योंकि मेरे लिए कर्म करने से तुम पूर्ण अवस्था (सिद्धि) को प्राप्त होगे। जिस भी कार्य में नियुक्त हैं, उसे श्रीभगवान का कार्य समझकर कर्त्तव्य पालन करना है। पिता की, पुत्र की, मालिक की अथवा नौकर की भूमिका है, जो भी कार्य श्रीभगवान ने सौंपा है वह उसी भूमिका में रह कर करना है। रङ्गमञ्च के कलाकार को जिस पात्र की भूमिका दी गयी है, वह उसी भूमिका में कर्त्तव्य पालन करें।

एक सुन्दर भजन गाते हैं। अगली बार भक्त के उन्तालीस लक्षणों पर विचार करेंगे। भाई साहब हनुमान प्रसाद पोद्दार जी की एक प्रार्थना गाते हैं। इसके बोल बड़े सुन्दर हैं।

भजन

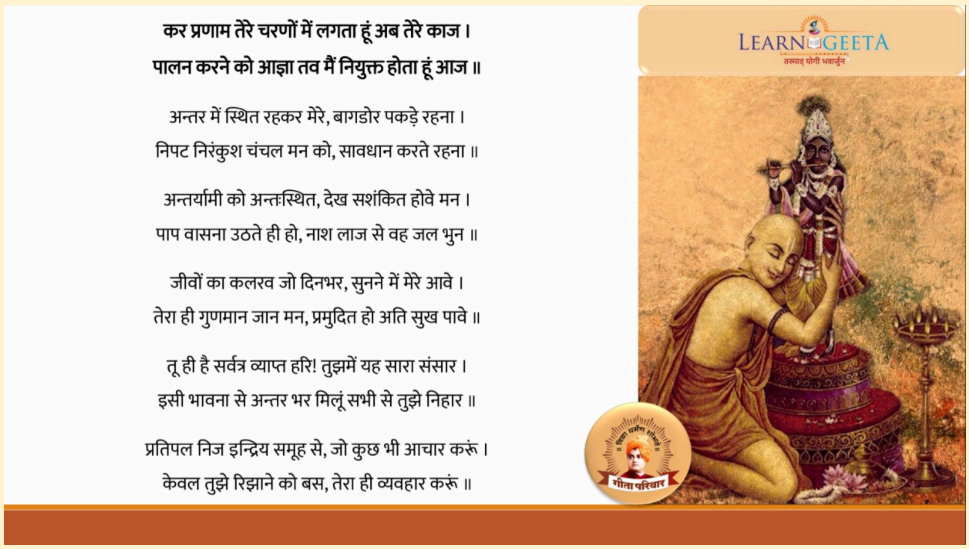

संकीर्तन:-
हरि शरणं हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम्

विचार मन्थन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता- विनोद जी शर्मा

प्रश्न- मैं एक बार गाय को रोटी खिलाने गया। वहाँ तीन-चार गायें और आ गईं। सबको मैंने रोटी बाँट दी। उसके बाद थोड़ा मैं आगे बढ़ा तो देखा कि चार-पाँच गायें और आ रही थी। मेरा मन थोड़ा असन्तुष्ट रहा। मैं सब को रोटी नहीं दे सका। मेरा मन द्वन्द्व में है कि मैं सबको नहीं दे पाया। क्या करूँ?

उत्तर -अभी नहीं दे पाए कोई बात नहीं, अगली बार ज्यादा लेकर जाइये और सभी गायों को रोटी दे दीजियेगा।

प्रश्नकर्ता:- शिव शंकर भैया

प्रश्न:- फल की इच्छा का त्याग मन, बुद्धि से होता है या स्वयं से होता है?

उत्तर:- आत्मा कुछ नहीं करती, हम प्रत्येक क्रिया स्थूल शरीर एवम् सूक्ष्म शरीर से करते हैं, हमारा अन्तर्मन चतुष्टय, जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, जब वह सङ्कल्प विकल्प करता है तो मन कहलाता है, निर्णय करता है तो बुद्धि कहलाता है, धारणा करता है तो चित्त कहलाता है। मैं हूँ- अहम् भाव में रहता है तो अहम् कहलाता है। प्रत्येक कर्म की निश्चयता भी मन, बुद्धि, चित्त, अहम् से होती है, अत: फल की इच्छा का त्याग भी बुद्धि से होता है।

प्रश्नकर्ता:- बी एम भैया

प्रश्न:- साकार और निराकार तो स्पष्ट है, किन्तु सगुण-निर्गुण क्या है? क्या श्रीभगवान में कोई गुण नहीं है?

उत्तर:-जब हम सच्चिदानन्द कहते हैं तो वह सगुण हो जाता है, हम उसमें सत्, चित्, आनन्द की अनुभूति करते हैं। जो सच्चिदानन्द से परे हैं, वे सच्चिदानन्द को बनाने वाले हैं, वे निर्गुण हैं। वे सर्वशक्तिमान हैं, अत: वहीं निर्गुण सगुण रूप में प्रकट हो जाते हैं। जिनके गुणों का वर्णन किया जा सकता है, वे सगुण हैं। जो किसी भी गुण, सत्य-असत्य से परे हैं वे निर्गुण हैं।

प्रश्न:- ध्यान बहुत कम होता है। कुछ दिन तो माला, जप, पाठ सबका उत्साह रहता है, किन्तु धीरे-धीरे उसमें न्यूनता आने लगती है। यह निरन्तरता कैसे बनी रहे?

उत्तर- जब हमारे भाव सात्त्विक होते हैं तो हमारा मन सात्त्विक कर्मों को करने के लिये प्रेरित होता है। जैसे ही रजोगुण एवम् तमोगुण की प्रधानता होती है, हम सात्त्विक कर्मों से विरत होने लगते हैं, इसलिये श्रीभगवान ने चतुर्थ अध्याय में बताया कि सत्त्वगुण को बढ़ाने के लिये रजोगुण एवम् तमोगुण को दबाओ। अपने पूरे दिन की दिनचर्या में यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि हमने जो भी कार्य किये उनमें किन गुणों की प्रधानता है। हमारा भोजन, अध्ययन, पठन, मनोरञ्जन सब में सात्त्विक गुणों की धीरे-धीरे वृद्धि करनी चाहिये। हमें जप आदि की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||